National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(65): 71-73
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

अकबरअली शेख
शासकीय कला, विज्ञान और-
वाणिज्य महाविद्यालय, खांडोळा

.

Correspondence:
अकबरअली शेख
शासकीय कला, विज्ञान और-
वाणिज्य महाविद्यालय, खांडोळा

समकालीन हिंदी रंगमंच के संदर्भ में 'एक अधपका-सा नाटक' का अध्ययन

अकबरअली शेख

समकालीन हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच में चिराग खंडेलवाल एक ऊर्जावान तथा सृजनशील युवा नाटककार और अभिनेता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनका जन्म 11 अगस्त 1990 को राजस्थान के गाँव बांदीकुई में हुआ। उन्होंने हैदराबाद विश्वविद्यालय से परफॉर्मिंग आर्ट्स में डिज़ाइन और डायरेक्शन की विशेषज्ञता प्राप्त की और इसी प्रशिक्षण के आधार पर नाट्य-जगत में सक्रिय रूप से प्रवेश किया।

चिराग खंडेलवाल का रंगमंचीय विकास केवल शैक्षणिक अध्ययन तक सीमित नहीं रहा। उन्होंने डॉ. अनुराधा कपूर, राजीव वेलीचेटी, साबिर ख़ान, केरेन लिबमैन और मोहित ताकलकर जैसे ख्याति प्राप्त निर्देशकों के सान्निध्य में रहकर रंगमंच की व्यावहारिक बारीकियों को समझा। उनके नाट्य-सृजन में इस प्रशिक्षण का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। इसका प्रमुख उदाहरण उनका चर्चित नाटक 'एक अधपका-सा नाटक' है, जिसने उन्हें विशेष पहचान दिलाई।

इसके अतिरिक्त 'एक ख़ून सौ बातें', 'एक अनसुनी बात' और 'मिराज मेलोडीज़' जैसे नाटक भी उनकी रचनात्मक क्षमता के प्रमाण हैं। चिराग खंडेलवाल केवल नाटककार ही नहीं, बल्कि एक सक्षम अनुवादक भी हैं। उन्होंने 'सेवेन अगेन्स्ट थेब्स', 'टू द स्टार्स' और 'मीरा' जैसे नाटकों का हिंदी में अनुवाद किया है। 'हुंकारो' नाटक के लिए उन्हें मेटा अवार्ड में सर्वश्रेष्ठ ओरिजिनल स्क्रिप्ट का सम्मान प्राप्त हो चुका है। संहिता मंच द्वारा आयोजित वार्षिक नाट्य प्रतियोगिता में कुल 170 नाटक प्रस्तुत हुए, जिनमें प्रथम पुरस्कार चिराग खंडेलवाल के नाटक 'एक अधपका-सा नाटक' को प्राप्त हुआ। द्वितीय पुरस्कार 'बागड़बिल्ला' तथा तृतीय पुरस्कार 'इमरोज़' को मिला। इस नाटक का अध्ययन यहाँ तीन प्रमुख पक्षों जैसे- लेखन शैली, सामाजिक सरोकार और रंगमंचीयता के आधार पर किया जा रहा है।

लेखन शैली

आधुनिक हिन्दी गद्य की विभिन्न विधाओं में नाटक एक अत्यंत प्राचीन और महत्वपूर्ण विधा है। यदि हम संस्कृत साहित्य की परंपरा की ओर दृष्टि डालें तो नाटक की एक सुदीर्घ परंपरा दिखाई देती है। उस समय नाटक के स्वरूप और तत्त्वों को समझने के लिए भरतमुनि के नाट्यशास्त्र का विशेष महत्व है। भरतमुनि ने नाटक के गुणों को निम्न श्लोक के माध्यम से स्पष्ट किया है—

"मृदुललित पदाढ्यं गूढशब्दार्थहीनं जनपदसुखबोध्यं युक्तिमन्नृत्ययोज्यम्।
बहुकृतरसमार्गं संधिसंधानयुक्तं स भवति शुभकाव्यं नाटकप्रेक्षकाणाम्॥"[1]

अर्थात नाटक में कोमल और सुंदर शब्दों का प्रयोग होना चाहिए, कठिन और दुर्बोध शब्दों का अभाव होना चाहिए, उसकी भाषा ऐसी हो जो जनसामान्य के लिए सहज बोधगम्य हो, उसमें तर्कसंगतता और मंचीयता का गुण हो तथा विभिन्न रसों की अभिव्यक्ति के साथ उसके सभी भाग आपस में सुसंगठित रूप से जुड़े हों।

यद्यपि यह परिभाषा काव्य के लक्षणों को भी व्यक्त करती है, तथापि इसे नाटक के गुणों के संदर्भ में भी ग्रहण किया जा सकता है।

समय के साथ नाटक की संरचना और स्वरूप में परिवर्तन आया। आधुनिक काल में पाश्चात्य और भारतीय नाटककारों ने कथानक, पात्र, संवाद-योजना, देशकाल, वातावरण, उद्देश्य तथा भाषा-शैली जैसे तत्त्वों के आधार पर नाटकों की रचना की। किंतु समकालीन नाट्य साहित्य में ऐसे नाटकों का महत्व बढ़ गया है जो पारंपरिक काव्यशास्त्रीय नियमों से हटकर समय की मानसिकता और सामाजिक विसंगतियों को नए शिल्प में अभिव्यक्त करते हैं।

'एक अधपका-सा नाटक' इसी प्रकार के प्रयोगधर्मी नाटकों का प्रतिनिधि उदाहरण है। नाटक में कलाकार 1 का यह संवाद पारंपरिक नाटकों की रूढ़ संरचना पर व्यंग्य करते हुए नए नाटकों की आवश्यकता को रेखांकित करता है— "अरे, नये नाटकों का वक्त है। कौन देखेगा वो नाटक।"[2]

इस नाटक की संरचना पारंपरिक अर्थों में विकसित कथानक और विस्तृत चरित्र-चित्रण से भिन्न है। यहाँ कथ्य की अपेक्षा मनःस्थिति को अधिक महत्त्व दिया गया है। नाटक दर्शक को कोई निश्चित अर्थ प्रदान नहीं करता, बल्कि उसे स्वयं अर्थ-निर्माण की प्रक्रिया में सहभागी बनने के लिए प्रेरित करता है। संवादों में तर्क की निरंतरता के स्थान पर विखंडन दिखाई देता है, जो आधुनिक मनुष्य की मानसिक स्थिति का प्रतीक बन जाता है।

संवादों की संरचना अत्यंत संक्षिप्त है और कई बार एक शब्द या छोटे वाक्य में ही व्यक्त होती है। उदाहरण—

"आग जालना मना है बे स्टेज पे
बताऊँ क्या?
धीरे-धीरे
तुरंत
मैंने नहीं लगाई
मैं बस देख रहा था
गलती से
छोड़ो अब
याद मत दिलाओ
ध्यान नहीं रहा
पता नहीं, किसने लगाई?
इसने
उसने
हमने
सबने"[3]

यह खंडित संवाद-रचना आधुनिक जीवन में संप्रेषण की विडंबना को प्रकट करती है। लोग बोलते तो हैं, परंतु संवाद सार्थक संप्रेषण में परिवर्तित नहीं हो पाता। छोटे-छोटे संवादों के कारण इन्हें अभिनेताओं द्वारा स्मरण रखना भी सरल है, जिससे मंचीय प्रस्तुति सहज हो जाती है।

संवादों की चर्चा करते समय यदि हम जयशंकर प्रसाद के नाटकों की ओर देखें, तो वहाँ संवाद अपेक्षाकृत विस्तृत और काव्यात्मक मिलते हैं। उदाहरण के रूप में 'ध्रुवस्वामिनी' के द्वितीय अंक में कोमा का संवाद उल्लेखनीय है— "इन्हें सींचना पड़ता है, नहीं तो इनकी रुखाई और मलिनता सौंदर्य पर आवरण डाल देती है। (देखकर) आज तो इनके पत्ते धुले हुए भी नहीं हैं। इनमें फूल, जैसे मुकुलित होकर ही रह गये हैं। खिलखिलाकर हँसने का मानों इन्हें बल नहीं। (सोचकर) ठीक, इधर कई दिनों से महाराज अपने युद्ध-विग्रह में लगे हुए हैं और मैं भी यहाँ नहीं आयी, तो फिर इनकी चिन्ता कौन करता है? उस दिन मैंने यहाँ दो मंच और भी रख देने के लिए कहा था, पर सुनता कौन है। सब जैसे रक्त के प्यासे ! प्राण लेने और देने में पागल ! बसन्त का उदास और अलस पवन आता है, चला जाता हैं कोई उस स्पर्श से परिचित नहीं। ऐसा तो वास्तविक जीवन नहीं है? (सीढ़ी पर बैठकर सोचने लगती है) प्रणय! प्रेम ! जब सामने से आते हुए तीव्र आलोक की तरह आँखों में प्रकाश पुंज उँडेल देता है, तब सामने की सब वस्तुएं और भी अस्पष्ट हो जाती हैं। अपनी ओर से कोई भी प्रकाश की किरण नहीं। तब वही केवल वही! हो पागलपन, भूल हो, दुःख मिले, प्रेम करने की एक ऋतु होती है। उसमें चूकना, उसमें सोच-समझ कर चलना, दोनों बराबर है। सुना है, दोनों ही संसार के चतुरों की दृष्टि में मूर्ख बनते हैं, तब कोमा, तू किसे अच्छा समझती है?"[4] प्रसाद के संवाद लंबाई और काव्यात्मकता के कारण अभिनेताओं के लिए याद रखना और स्वाभाविक अभिनय करना कठिन बना देते हैं, जबकि चिराग खंडेलवाल के संवाद संक्षिप्त और मंचोपयोगी हैं।

भाषा की दृष्टि से नाटक सरल, स्पष्ट और बोलचाल के निकट है। इसमें हैदराबादी बोलचाल के शब्द— जैसे नक्को, उप्पर, जुम्मा-जुम्मा— का प्रयोग भी मिलता है, जो नाटक को स्थानीय रंग प्रदान करता है। कुछ स्थानों पर अभद्र शब्दों का प्रयोग भी हुआ है, जो कृत्रिमता को तोड़ते हुए यथार्थ की तीव्रता को सामने लाता है।

नाटक का शीर्षक भी अत्यंत सार्थक है। 'अधपका' शब्द केवल नाटक की संरचना का संकेत नहीं देता, बल्कि आधुनिक समाज की अस्थिरता, संक्रमणशीलता और अपूर्ण चेतना का प्रतीक बन जाता है। यह अधूरापन उस समय-बोध को व्यक्त करता है जिसमें मनुष्य स्वयं को पूर्ण रूप से व्यक्त करने में असमर्थ दिखाई देता है।

सामाजिक सरोकार

सामाजिक सरोकारों की दृष्टि से यह नाटक अत्यंत प्रासंगिक और तीक्ष्ण है। यह किसी एक समस्या तक सीमित न रहकर समाज की विभिन्न विसंगतियों और जड़ मानसिकताओं को उजागर करता है। 'फायर ब्रिगेड ऑफिस' का दृश्य मानवीय संवेदनहीनता और जातिगत भेदभाव पर तीखा व्यंग्य प्रस्तुत करता है। आग लगने की सूचना मिलने के बावजूद कर्मचारी तुरंत सहायता के लिए नहीं निकलते। इस प्रसंग में आया संवाद समाज में गहराई तक व्याप्त जातिगत मानसिकता को उजागर करता है—

"कैसे मर रहा है अपनी जात वालों को बचाने के लिए...

तू कैसे बात कर रहा है इनसे

साले... तेरा तो सीनियर हूँ...

पर जात का तो नीचा है...

पर मुझसे तो ऊँचा नहीं है ना। पानी माँगता है ये मुझसे!! साले के पुरखे हमारे

सामने से नहीं गुजरते थे। मन तो करता है मूत पिला दूँ साले को।"[5]

यह प्रसंग दर्शाता है कि समाज में जातिगत भेदभाव की जड़ें कितनी गहरी हैं। जब समाज की रक्षा करने वाले संस्थान भी ऐसे पूर्वाग्रहों से संचालित होने लगते हैं, तब मानवीय मूल्यों का क्षरण स्पष्ट दिखाई देता है। ऐसी स्थिति में आग केवल भवनों को ही नहीं, बल्कि मनुष्यता और संवेदना को भी जला देती है।

इसी प्रकार अब्बू-अम्मी और जुनैद का प्रसंग सामाजिक प्रतिष्ठा तथा श्रम के प्रति हीन भावना को सामने लाता है। जुनैद को सीवर क्लीनिंग का टेंडर मिलता है, जो आर्थिक दृष्टि से लाभदायक है; किंतु परिवार सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण उसे यह कार्य करने से रोकना चाहता है। इस मनःस्थिति को व्यक्त करता हुआ संवाद उल्लेखनीय है— "अब्बू: तू क्या चाहता है? चाहता है तू? कल को मैं बाहर जाऊँ और लोग बोलें— 'इमाम साहब... वो हमारी गटर बंद है... जुनैड को भेज दीजिये।'"[6] यह प्रसंग हमें यशपाल की कहानी 'परदा' की याद दिलाता है, जहाँ सामाजिक प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए वास्तविक आर्थिक स्थिति को छिपाया जाता है।

रंगमंचीयता

मंचीयता की दृष्टि से यह नाटक अत्यंत प्रयोगधर्मी और लचीला है। इसकी प्रस्तुति के लिए विस्तृत मंच-सज्जा की आवश्यकता नहीं होती; न्यूनतम मंच-सामग्री, प्रकाश और ध्वनि के सूक्ष्म प्रयोग से भी इसे प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है। संवाद छोटे और संक्षिप्त होने के कारण कलाकारों के लिए उन्हें स्मरण रखना और अभिनय में स्वाभाविकता बनाए रखना सरल हो जाता है। नाटक में मौन और विराम का भी विशेष महत्व है। कई बार चुप्पी स्वयं संवाद से अधिक अर्थपूर्ण हो जाती है और दर्शकों को सोचने के लिए प्रेरित करती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'एक अधपका-सा नाटक' समकालीन हिन्दी रंगमंच की एक महत्त्वपूर्ण और प्रयोगधर्मी कृति है। इसका 'अधपकापन' दरअसल समय की अधूरी समझ, सामाजिक चेतना की अपूर्णता और आधुनिक मनुष्य की अस्थिर मानसिकता का प्रतीक है। लेखन-शैली की नवीनता, सामाजिक सरोकारों की गहनता और मंचीय संभावनाओं के कारण यह नाटक दर्शकों को केवल मनोरंजन ही नहीं देता, बल्कि उन्हें प्रश्न करने, सोचने और आत्ममंथन करने के लिए प्रेरित करता है। इसी कारण यह नाटक समकालीन नाट्य-साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित करता है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. भागीरथ मिश्र, काव्यशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2018, पृ.6
2. चिराग खंडेलवाल, 'एक अधपका-सा नाटक', राजकमल प्रकाशन, 2023, पृ. 19
3. चिराग खंडेलवाल, 'एक अधपका-सा नाटक', राजकमल प्रकाशन, 2023, पृ. 21-22
4. जयशंकर प्रसाद, 'ध्रुवास्वामिनी', प्रकाशन संस्थान, 2015, पृ. 25
5. चिराग खंडेलवाल, 'एक अधपका-सा नाटक', राजकमल प्रकाशन, 2023, पृ. 41
6. चिराग खंडेलवाल, 'एक अधपका-सा नाटक', राजकमल प्रकाशन, 2023, पृ. 49